Dr. Vandana Suman
Associate Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara
M.A - II Sem Philosophy
CC-09 - Indian Linguistic trends

"स्फोटवाद"

भारतीय दर्शन विशेषकर व्याकरण-दर्शन या भाषा दर्शन के अन्तर्गत स्फोटवाद एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक स्फोटायन ऋषि माने जाते हैं। पाणिनी ने अपने 'अष्टाध्यायी' में इस ऋषि का उल्लेख किया है। नागेश भट्ट की पुस्तक (स्फोटवाद) में इन ऋषि को ही स्फोटवाद का प्रतिपादक माना गया है। हरदत्त की काशिकावृत्ति की टीका में भी इस तथ्य का समर्थन मिलता है। भारद्वाज ऋषि की भी मान्यता है कि स्फोटायन नामक ऋषि हुए थे। परन्तु एकपद हालदार का मानना है कि काशीकृत पुक्ति में 'औणिज' नामक ऋषि रहते थे जिन्होंने शब्द के अर्थ की एव अभिव्यक्ति की शक्ति को 'स्फोट' नाम दिया था। फलतः इस ऋषि को 'स्फोटायन' कहा जाने लगा। जो हो मान्यता यही है कि स्फोटायन ही स्फोटवाद के प्रवर्तक हैं। स्फोटायन के पूर्व "औदुम्बरायण" नामक विद्वान ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को बतलाने वाला सिद्धान्त प्रतिपादित किया था किन्तु उन्होंने 'स्फोट' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। पाणिनी के पूर्व स्फोट शब्द का प्रयोग सम्भवतः नहीं देखा जाता है। यास्क का 'निरुक्त' में शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्धों का प्रतिपादन हुआ है, जो वस्तुतः 'स्फोट' का ही सिद्धान्त है। इसलिए माना जाता है कि स्फोटवाद का सबसे पहला उल्लेख (निरुक्त) में मिलता है। किन्तु कई पुराणों में भी स्फोट शब्द का उल्लेख मिलता है। इन सभी ग्रन्थों में स्फोट को

"आदि का नित्य शब्द" की संज्ञा दी गई है।
"स्फोटवाद" वैयाकरणों का
शब्द नित्यत्ववाद है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार
प्रत्येक शब्द का आन्तरिक निरन्तर प्रतीक
रहता है, जो उनके प्रत्येक अर्थ का बोध
कराता है। यही प्रतीक 'स्फोट' नाम से
प्रसिद्ध है। 'स्फोट' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम
पतंजलि ने अपने महाभाष्य में किया है। जो
'स्फोट' ब्रह्म शब्द का समानार्थक है, उसे
स्फुट होता है, अभिव्यक्त होता है।
'स्फोट' कहते हैं। 'ब्रह्म' शब्द भी 'बृह'
धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है
विकसित होना, विस्तृत होना, फैलना। उपनिषदों
तथा ब्राह्मण में भी ब्रह्म की यह परिभाषा
दी गई है - 'बृहति बृंहयति च तस्मात् ब्रह्म'
अर्थात् बृहत होने तथा दूसरों को बृहत करने
में जो समर्थ हो वह ब्रह्म है। बृहत्वात्
बृंहणत्वाच्च तद् ब्रह्म इत्यभिधीयते (विष्णु
पुराण)। 'स्फोट' शब्द का भी ऐसा ही
अर्थ है 'स्फुटयते अस्मात् इति स्फोटः'
स्फुटयते अभिव्यज्यते वर्णो, 'यस्मिन्
स्फुटः इसके यस्मात् स्फुटत्यर्थः' अर्थात्
इस 'स्फोट' के अर्थ बतलाए गए हैं
जो स्फुटित होता है, अभिव्यक्त होता है
वह 'स्फोट' है। जिससे आकाश स्पष्ट होते हैं
शब्द स्फुट होते हैं
अभिव्यक्त होते हैं उसे 'स्फोट' कहा
जाता है। जिससे समस्त अर्थजात
संसार, अभिव्यक्त होता है वह
'स्फोट' अथवा कारण रूप शब्दब्रह्म

28 WED JAN

'स्फोट' का [illegible]
के लिए यही शब्दों से वर्णों की नित्यता
का ज्ञान अपेक्षित है। व्याकरण दर्शन
में वर्ण की नहीं नित्य वाक्य को ही
मानता है। ज्ञान की इकाई वाक्य या वाक्यार्थ
है। और वाक्य शब्दों का समाहार है।
शब्दों और वाक्यों के ही अर्थ होते हैं,
वर्णों के नहीं, और न शब्द एवं
वाक्य ही नित्य हैं। शब्द वर्णों द्वारा
अभिव्यक्त होते हैं, परन्तु वे वर्णों से भिन्न
हैं। 'वर्ण नित्यत्व' आदि में प्रतीति जनक
एवं स्फोटत्व। शब्द और अर्थ का
सम्बन्ध भी नित्य है। (सम्बन्ध सूत्र)
कात्यायित शब्दानां नित्यत्वे द्यौः। शब्दस्य
हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात कृतः कथम्॥
व्याडि संग्रह में वर्ण अभिबोधन में कारण
नहीं है। वर्ण, न तो संघात रूप से
और न पृथक्-पृथक् उच्चारण होकर
ही अभिबोधन करते हैं। यद्यपि वर्णों से
ही पद या शब्द बनते हैं तथापि शब्द
के अर्थ होते हैं वर्णों के नहीं। उच्चरित
होते ही प्रत्येक वर्ण नष्ट हो जाता है।
अतः वर्ण से पद या शब्द का ज्ञान
सम्भव नहीं। क्षणिक वर्णों से पद नहीं
बन सकते, क्योंकि उच्चरित होते ही
ये नष्ट हो जाते हैं। अतः ही बाह्य
बुद्धि से शब्दों या पदों को हम
वर्णों का संघात मात्र मान लें
परन्तु व्याकरण दर्शन में सामने
शब्द नित्य है और अनेक

2015

गर्भ भी निश्चित है।

(ख), क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ६ श्लोक ४४) में शब्द ब्रह्म वेद का ही वाचक माना गया है। इसी कारण वेदों के शुद्ध उच्चारण के लिए ऋषियों ने एक पृथक वेदाङ्ग बनाया जिसे शिक्षा कहते हैं, और व्याकरण को वेदों का मुख मान लिया गया। व्याकरणं वेदानां मुखम्। शब्दों के शुद्ध उच्चारण के बिना अपेक्षित अर्थ का बोध नहीं होता। वैयाकरणों की दृष्टि में एक शब्द भी सम्यक् प्रकार से प्रकृति प्रत्यय विभाग ज्ञानपूर्वक ज्ञात हो जाने तथा भलीभाँति प्रयुक्त होने पर इस लोक में तथा परलोक में यथेष्ट फलप्रद होता है। व्याकरण वेदों का प्रथमाङ्ग है और इसीलिए 'वेद-रक्षा' व्याकरण का प्रथम प्रयोजन है। महाभारत शान्तिपर्व में कहा गया है कि शब्द ब्रह्म में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति (महाभारत शान्ति पर्व अ २१६०)। जिस प्रकार सभी शारीरिक मलों तथा व्याधियों का निराकरण वैद्यक शास्त्र द्वारा सम्भव है, ठीक उसी तरह वैयाकरणों की सम्मति में 'वाङ्मल' की अपाकृति व्याकरण द्वारा ही साध्य है।

संसार के मूल में नाद, शब्द विद्यमान है। बाइबल में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में वाक था (L...) विद्यमान था और यह परब्रह्म के साथ था (सेंट जॉन)। ओंकार ब्रह्म का निकटतम नाम है (नादरूप ब्रह्म

अतिशय गति)। शब्द आगम
नाद से जो कोलाहल, विनाद, शब्द आदि
का बोध होता है [illegible] आगत, नाद, राग का
ही प्रमाण है। [illegible] को [illegible] से [illegible]
संतान [illegible] प्राप्त किया जाता है।
देवता भी [illegible] की गाथा के निमित्त
जाने के लिए स्वरहीन ऋचाओं से संघर्ष
किया। पर उन्हें सफलता प्राप्त नहीं
रही थी। तब देवताओं ने स्वरहीन
ऋचाओं से निकलकर स्वरों की शरण
ली। जब देवता स्वर में प्रविष्ट हो गए तब
मृत्यु [illegible] उनको नहीं पहचान सकी।
[illegible] देवताओं को अपने [illegible]
में जाने के लिए स्वर मुद्रा ध्वनि
को उत्पन्न किया और तब देवताओं
ने स्वर से निकलकर 'ओम' की शरण
ली। इस आख्यायिका से यह अभिप्राय
निकलता है कि शब्द ही [illegible] से
निसृत है। शब्द का आधार स्वर
और स्वर का आधार 'ओम' है।
शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक
अनुभवों की प्राप्ति के लिए बनाये जाने
वाले वैदिक मंत्रों का आधार 'ओम'
ही है। स्वर की शक्तियाँ 'ओम' के
समान सर्वव्यापक हैं। (व्यापिनी व्योम
पाः स्वरव्याः स्वरशक्तयः [illegible] गतिमान
तन्त्र)। इसीलिए तो सामवेद संगीत
का आधार बना। योगोपनिषद में
कहा गया है कि सर्वदा नाद के
अभ्यास से वासनाओं का क्षय

होता है (सङ्गी नादानुसन्धानात संक्षीणा वासना भवेत (योगोपनिषदे))।
आजकल अमरीका जैसे देशों में अनेक रोगों के निदान के लिए संगीत, वाद्य-ध्वनि आदि की व्यवस्था की जाती है।

स्फोट भेद — परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी

अद्वैत वेदान्त की प्रक्रिया के समान वैयाकरण भी परमात्मा और जीवात्मा के त्रिविध शरीर, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर की कल्पना करते हैं। आत्मा को वाङ्मय, मनोमय और प्राणमय बतलाया गया है। आत्मा का वाङ्मय स्वरूप कारणशरीर, मनोमय सूक्ष्मशरीर तथा प्राणमय स्थूलशरीर का रक्षक है क्योंकि, मन और प्राण इनमें संबंध है। प्राणमय रूप परिवर्तनशील और नाशवान है मनोमय शरीर प्रलयपर्यन्त रहता है, तत्पश्चात नष्ट हो जाता है और वाङ्मय स्वरूप महाप्रलय पर्यन्त विद्यमान रहता है। परन्तु परमात्मा का वाङ्मय स्वरूप अविनाशी है। प्रलय तक मनोमय स्वरूप और महाप्रलय तक प्राणमय स्वरूप विद्यमान रहते हैं। जीवात्मा के वाङ्मय स्वरूप को 'स्फोट' कहते हैं जो लौकिक शब्दों के रूप में अभिव्यक्त होता है। वाङ्मय ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड में विद्यमान स्फोट है जो वैदिक शब्दों के रूप में अभिव्यक्त होकर वेद हो जाता है और इसीलिए

वेदों के शब्दों में तथा
उनके पाठ में परिवर्तन करने का मनुष्य
को अधिकार नहीं है। शब्दब्रह्म के
विधान में स्फोट, मूलाधारादि में स्थित
रहने वाला परा, पश्यन्ती, मध्यमा
और वैखरी कहलाता है। उपाधिभेद
से भिन्न-भिन्न रूपों में यह अभिव्यक्त होता है।
शास्त्रकारों के मत में शरीर में मूलाधार में जो नादरूप
शब्दब्रह्म विद्यमान रहता है वह परा है।
में अभिव्यक्त होता है। यही पश्यन्ती है।
मन का विषय होने से यही अभिव्यक्त
होता है। हृदय में वायु द्वारा अभिव्यक्त
होकर मध्यमा और मुख एवं कण्ठ आदि
स्थानों द्वारा उच्चरित होने पर वैखरी
कहलाता है। इस प्रकार वाक्य स्फोट के
ये चार रूप हैं। (मूलाधारात् प्रथममुदितो
यश्च भावः पराख्यः पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो
बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः। वक्त्रे वैखर्यथ रुरुदिषो-
रस्य जन्तोः, सुषुम्ना बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो
वर्णसंघः। परवाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती
नाभिसंस्थिता। हृदिस्था मध्यमा वैखरी
कण्ठदेशगा॥)
इनमें निर्विकल्प-सविकल्प
भेद से, परा एवं पश्यन्ती की भेद
प्रतीति केवल योगियों को होती है
मनुष्यों के साधारण ज्ञान का
विषय नहीं। मध्यमा और वैखरी
ही साधारण ज्ञान के विषय हैं।
इनमें प्रथम तीन स्थूल रूप में अभिव्यक्त
नहीं होते। ये आधार, नाभि

केवल वैखरी वाणी की ग्राहकता ही 'स्फोट' [illegible] क्योंकि कथन के विचारों [illegible] जिसे अनुमान लगाते हैं।

अन्य भारतीय पाठ्दर्शनों में 'स्फोट' सिद्धान्त [illegible] भिन्न-भिन्न विषयों 'स्फोट' का प्रतिपादन हुआ है, जिसको [illegible] ग्रन्थों द्वारा होता है, अन्य भारतीय पाठ्दर्शनों में भी बहुत [illegible] विचार [illegible] 'स्फोट' के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। योगसूत्रों में सर्वप्रथम योगिनी शब्द [illegible] वाद को स्वीकार करते हैं परन्तु स्वामी [illegible] योग दर्शन [illegible] खण्डन [illegible] में 'स्फोट' की सत्ता [illegible] स्वीकार करता है [illegible] क्योंकि [illegible] दोनों [illegible] योग सूत्र [illegible] विद्वानों [illegible] और [illegible] वैयाकरण के [illegible] पतंजलि को। (देखें डॉ. [illegible] हिन्दी [illegible] ऑफ [illegible] पृ० 231-232)। पतंजलि ने ही सर्वप्रथम 'स्फोट' शब्द का प्रयोग [illegible] महाभाष्य [illegible] 'स्फोट' [illegible] वैदिक [illegible] शब्दों से पृथक् और स्वतंत्र

'स्फोट' की सत्ता की मीमांसा

अनावश्यकता है, यदि पद ही स्वतः अर्थप्रकाशक के लिए पर्याप्त है तब लोग 'स्फोट' की कल्पना क्यों करें? स्फोट तो कदापि प्रत्यक्षगोचर नहीं होता फिर इसके अस्तित्व को क्यों स्वीकार कर लिया जाए? वर्णों से पृथक् कोई शब्द नहीं और जब शब्द ही 'स्फोट' है तब शब्दों से पृथक 'स्फोट' को मानने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। वर्णों तथा अक्षरों से भिन्न 'स्फोट' के अस्तित्व को ठीक उसी तरह नहीं प्रमाणित किया जा सकता जिस तरह वृक्षों से भिन्न वन की सत्ता को हम नहीं स्वीकार कर सकते। नैयायिक शब्द के नित्यत्व को स्वीकार नहीं करते। शब्द प्रत्यक्षज्ञान का विषय है और उत्पन्न तथा नष्ट होता है। यदि शब्द नित्य होता तो निश्चय ही उच्चारण होने के पूर्व ही हमें सदा इसका प्रत्यक्ष होता रहता क्योंकि आकाश और श्रोत्रेन्द्रिय के बीच कोई उपाधि नहीं है जिससे शब्द के ज्ञान में किसी प्रकार की बाधा हो।